मुंशी प्रेमचन्द
का
निबंध साहित्य

समाज और राष्ट्र चिंतन

नमूना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

मुंशी प्रेमचन्द
का
निबंध साहित्य

समाज और राष्ट्र चिंतन

डॉ. ऋतू वार्ष्णेय

नमूना • SAMPLE

अखण्ड पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली (भारत)

द्वारा प्रकाशित

अखण्ड पब्लिशिंग हाउस

एल-9ए, प्रथम तल, गली न. 42,
सादतपुर एक्सटेंसन, दिल्ली-110094 (भारत)

Phone : 9968628081, 9555149955
E-mail : akhandpublishinghouse@gmail.com
akhandpublishing@yahoo.com
Website : www.akhandbooks.com

मुंशी प्रेमचन्द का निबंध साहित्य : समाज और राष्ट्र चिंतन

Munshi Premchand ka Nibandh Sahitya:
Samaj Aur Rastra Chintan
by Dr. Ritu Varshaney

आईएसबीएन : 978-81-996391-5-7
सर्वाधिकार : © लेखक
संस्करण : प्रथम संस्करणः 2026

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी हिस्से को प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इलेक्ट्रॉनिक या किसी अन्य माध्यम द्वारा पुनः प्राप्ति समेत किसी भी रूप में प्रतिलिपिकृत, अनुवादित, संगृहीत नहीं किया जा सकता है और न ही किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम द्वारा इसे प्रसारित किया जा सकता है।
इस पुस्तक में लेखक द्वारा व्यक्त विचार उनके व्यक्तिगत हैं जिसका प्रकाशक से कोई संबंध नहीं है।

भारत में प्रकाशित

झपसू यादव द्वारा 'अखण्ड पब्लिशिंग हाउस' के लिए प्रकाशित। वी.एम. ग्राफिक, दिल्ली द्वारा कवर डिजाइन व शब्द संयोजन तथा आरना इंटरप्राइजेज, दिल्ली से मुद्रित।

SAMPLE

भूमिका

हिंदी साहित्य के इतिहास में यदि किसी एक लेखक ने साहित्य को समाज की धड़कनों से जोड़कर उसे जनजीवन का दर्पzण बनाया, तो वह नाम है—मुंशी प्रेमचंद। वे केवल कथाकार नहीं थे, केवल उपन्यासकार नहीं थे, बल्कि भारतीय समाज की आत्मा के संवेदनशील व्याख्याकार थे। उन्होंने उस भारत को शब्द दिए जो गाँवों में बसता था, जो गरीबी, शोषण, अन्याय, जातिगत भेदभाव, स्त्री-वंचना और औपनिवेशिक दमन से जूझ रहा था। प्रेमचंद का साहित्य केवल पढ़ा नहीं जाता, उसे अनुभव किया जाता है; वह केवल मनोरंजन नहीं करता, बल्कि सोचने, प्रश्न करने और आत्ममंथन करने के लिए विवश करता है। यही कारण है कि उनके साहित्य की प्रासंगिकता समय के साथ कम नहीं हुई, बल्कि और अधिक व्यापक हुई है। प्रेमचंद को सामान्यतः उनके उपन्यासों और कहानियों के लिए याद किया जाता है। 'गोदान', 'गबन', 'निर्मला', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'सेवासदन' और 'कफन', 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'पंच परमेश्वर' जैसी कालजयी रचनाएँ उन्हें अमर बनाती हैं। किंतु उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष उनका निबंध-साहित्य भी है, जिस पर अपेक्षाकृत कम चर्चा हुई है। वस्तुतः प्रेमचंद के निबंध उनके साहित्यिक दर्शन, सामाजिक दृष्टि, सांस्कृतिक चिंतन और मानवीय मूल्यों को समझने की कुंजी हैं। यदि उनकी कहानियाँ और उपन्यास उनके विचारों का कलात्मक रूप हैं, तो उनके निबंध उन विचारों की प्रत्यक्ष और स्पष्ट अभिव्यक्ति हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी महत्त्वपूर्ण पक्ष को केंद्र में रखकर तैयार की गई है। यह पुस्तक केवल प्रेमचंद के निबंधों का परिचय नहीं कराती, बल्कि उनके समूचे वैचारिक संसार को समझने का एक गंभीर प्रयास है। इसमें प्रेमचंद के जीवन, व्यक्तित्व, साहित्यिक विकास, सामाजिक प्रतिबद्धता, साहित्य-दृष्टि, भाषा-विचार, राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिशील सोच तथा निबंधकार के रूप में उनके योगदान का समग्र विवेचन किया गया है। पुस्तक का उद्देश्य पाठकों को यह बताना है कि प्रेमचंद केवल कथा-साहित्य के महान रचनाकार नहीं थे, बल्कि एक ऐसे चिंतक भी थे जिन्होंने साहित्य को समाज परिवर्तन का सशक्त माध्यम माना।

प्रेमचंद का जीवन स्वयं एक संघर्षगाथा था। आर्थिक अभाव, पारिवारिक कठिनाइयाँ, सामाजिक चुनौतियाँ और राष्ट्रीय परिस्थितियाँ—इन सबने उनके व्यक्तित्व को आकार दिया। उन्होंने जीवन के आरंभिक वर्षों में जो कठिनाइयाँ देखीं, वही आगे चलकर उनकी रचनाओं की संवेदना बनीं। वे जानते थे कि गरीबी क्या होती है, सामाजिक अन्याय किसे कहते हैं और व्यवस्था का शोषण किस प्रकार सामान्य मनुष्य को तोड़ देता है। यही कारण है कि उनके साहित्य में पात्र कल्पना के नहीं, जीवन की वास्तविक भूमि से जुड़े दिखाई देते हैं। इस पुस्तक की एक विशेषता यह है कि इसमें प्रेमचंद के निबंध-साहित्य को उनके युगीन संदर्भों में समझने का प्रयास किया गया है। प्रेमचंद ऐसे समय में लिख रहे थे जब भारत स्वतंत्रता-संग्राम की अग्नि से गुजर रहा था। समाज अनेक प्रकार की विसंगतियों से घिरा हुआ था। जाति, वर्ग, लिंग और धर्म के आधार पर विभाजन गहरा था। ऐसे समय में प्रेमचंद ने साहित्य को केवल सौंदर्य-बोध तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे सामाजिक चेतना का माध्यम बनाया। उनके निबंधों में बार-बार यह विचार सामने आता है कि साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालना और समाज को दिशा देना है। 'साहित्य का उद्देश्य' जैसे उनके प्रसिद्ध निबंध आज भी साहित्यिक विमर्श के आधारभूत दस्तावेज माने जाते हैं। प्रेमचंद का मानना था कि साहित्य जीवन की आलोचना है। वह समाज की विसंगतियों को सामने लाता है, मनुष्य को संवेदनशील बनाता है और उसे बेहतर समाज के निर्माण के लिए प्रेरित करता है। उनकी दृष्टि में साहित्यकार केवल कलाकार नहीं, बल्कि समाज का जागरूक प्रहरी भी है। यह विचार आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना उनके समय में था। पुस्तक में प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि का भी विस्तृत विश्लेषण किया गया है। उन्होंने किसानों, मजदूरों, स्त्रियों, दलितों और वंचित वर्गों की पीड़ा को अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया। वे मानते थे कि साहित्य का वास्तविक दायित्व उन्हीं लोगों की आवाज़ बनना है जिन्हें समाज ने लंबे समय तक उपेक्षित रखा। उनके निबंधों और रचनाओं में सामाजिक न्याय की तीव्र आकांक्षा दिखाई देती है। यही कारण है कि उनका साहित्य केवल अपने समय का दस्तावेज नहीं, बल्कि मानवता की सार्वकालिक चिंता का भी प्रतिनिधि है। प्रेमचंद की भाषा-दृष्टि भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने हिंदी और उर्दू को विरोधी भाषाओं के रूप में नहीं देखा। उनके लिए भाषा का उद्देश्य संप्रेषण था, विभाजन नहीं। उन्होंने सरल, सहज और जनसामान्य की भाषा को साहित्य की भाषा बनाया। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ शिक्षित वर्ग के साथ-साथ सामान्य पाठकों के बीच भी समान रूप से लोकप्रिय हुईं। भाषा के प्रति उनका यह

लोकतांत्रिक दृष्टिकोण आज के समय में और अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है। यह पुस्तक निबंध विधा के विकास को भी समझने का अवसर प्रदान करती है। हिंदी निबंध साहित्य की परंपरा, उसके स्वरूप, विशेषताओं और विकास-क्रम का विवेचन करते हुए यह पुस्तक यह स्पष्ट करती है कि प्रेमचंद ने इस विधा को किस प्रकार समृद्ध किया। उनके निबंधों में विचार की गंभीरता है, भाषा की सरलता है, तर्क की स्पष्टता है और संवेदना की ऊष्मा है। वे कठिन से कठिन विषय को भी सहजता से प्रस्तुत करते हैं और पाठक को विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। पुस्तक का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष प्रेमचंद की साहित्यिक मान्यताओं का विश्लेषण है। साहित्य क्या है? उसका उद्देश्य क्या होना चाहिए? लेखक का समाज के प्रति क्या दायित्व है? साहित्य और जीवन का संबंध क्या है? इन प्रश्नों पर प्रेमचंद ने गहराई से विचार किया। उनके लिए साहित्य जीवन से अलग कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं था। वे मानते थे कि साहित्य को मनुष्य के दुःख-सुख, संघर्ष, आशा और आकांक्षाओं से जुड़ा होना चाहिए। यही दृष्टि उनके समूचे लेखन में दिखाई देती है। आज जब साहित्य, संस्कृति और समाज के संबंधों पर नए सिरे से विचार किया जा रहा है, तब प्रेमचंद का चिंतन हमें एक संतुलित और मानवीय दृष्टि प्रदान करता है। उन्होंने साहित्य को जनपक्षधर बनाया, उसे नैतिक चेतना से जोड़ा और मनुष्य की गरिमा को सर्वोच्च मूल्य माना। उनकी यही विशेषता उन्हें कालजयी बनाती है। यह पुस्तक विद्यार्थियों, शोधार्थियों, अध्यापकों, साहित्य-प्रेमियों तथा प्रेमचंद के विचारों को गहराई से समझने के इच्छुक सभी पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। इसमें संकलित सामग्री केवल सूचना प्रदान नहीं करती, बल्कि पाठक को चिंतन की दिशा भी देती है। यह पुस्तक प्रेमचंद के निबंध-साहित्य के माध्यम से उनके व्यापक साहित्यिक और वैचारिक व्यक्तित्व को समझने की एक सार्थक कोशिश है। आशा है कि यह कृति पाठकों को मुंशी प्रेमचंद के उस रूप से परिचित कराएगी जिसे अक्सर उनकी कथा-कृतियों की विशाल लोकप्रियता के कारण पर्याप्त ध्यान नहीं मिल पाता। यह पुस्तक पाठकों को केवल प्रेमचंद के साहित्य तक नहीं, बल्कि उनके विचारों, मूल्यों और मानवतावादी दृष्टिकोण तक पहुँचाने का कार्य करेगी। यदि इस पुस्तक के अध्ययन के बाद पाठक प्रेमचंद को एक नए दृष्टिकोण से समझने लगें, तो इसका उद्देश्य सफल माना जाएगा।

—डॉ. ऋतू वार्ष्णेय

नमूना • SAMPLE

अनुक्रमणिका

भूमिका	*v*
अध्याय–1 : मुंशी प्रेमचन्द — जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व	1
अध्याय–2 : निबंध साहित्य – स्वरूप, विशेषताएँ और प्रेमचन्द का योगदान	29
अध्याय–3 : साहित्य के प्रति प्रेमचन्द की मान्यताएँ	58
अध्याय–4 : प्रेमचन्द के निबंधों में हिन्दू समाज और सुधार चेतना	86
अध्याय–5 : किसान–मजदूर जीवन का यथार्थ	112
अध्याय–6 : प्रेमचन्द का नारी-चिंतन	138
अध्याय–7 : साम्प्रदायिक सौहार्द एवं सामाजिक सद्भाव	165
अध्याय–8 : आध्यात्मिक चेतना और नैतिक विचार	190
अध्याय–9 : राष्ट्र, राजनीति और स्वतंत्रता आन्दोलन	217
अध्याय–10 : हिंदी भाषा – समृद्धि और भाषा-चिंतन	247
अध्याय–11 : निबंधकार के रूप में प्रेमचन्द — समग्र मूल्यांकन	274

नमूना SAMPLE

नमूना • SAMPLE

अध्याय–1 :

मुंशी प्रेमचन्द — जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भूमिका

हिंदी-उर्दू साहित्य के इतिहास में **मुंशी प्रेमचन्द** का नाम अत्यन्त आदर से लिया जाता है। वे मात्र एक उपन्यासकार या कहानीकार ही नहीं थे, बल्कि एक विचारक, समाज-सुधारक और राष्ट्रीय चेतना के प्रवक्ता भी थे। उनकी रचनाओं में न केवल **यथार्थवाद** का प्रखर स्वर मिलता है, बल्कि मानवीय करुणा, संवेदना और राष्ट्रभक्ति भी झलकती है। इस अध्याय में हम उनके जीवन की घटनाओं, पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा, प्रारम्भिक संघर्ष, साहित्यिक यात्रा तथा व्यक्तित्व की विशेषताओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

शोध का उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य यह है कि पाठक **प्रेमचन्द** के जीवन और विचारों को व्यापक दृष्टि से समझें। यहाँ उनके **जन्म**, **शिक्षा**, **पारिवारिक परिस्थितियों**, **प्रारम्भिक संघर्षों**, **साहित्यिक यात्रा**, **सामाजिक प्रतिबद्धता**, तथा उनकी **साहित्यिक विशेषताओं** पर गहन चर्चा प्रस्तुत की जाएगी। साथ ही, संबंधित संदर्भों और प्रमाणों के लिए विश्वसनीय स्रोतों से उद्धरण भी शामिल किये गये हैं।

१ जन्म, पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं शिक्षा

१.१ जन्म और परिवार

मुंशी प्रेमचन्द का जन्म **३१ जुलाई १८८०** को उत्तर प्रदेश के बनारस (वर्तमान वाराणसी) के पास **लमही** गाँव में हुआ था। जन्म के समय उनका नाम **धनपत राय** रखा गया था, जिसका अर्थ है "धन का स्वामी"। उनका परिवार **चित्रगुप्तवंशी कायस्थ**

था और उसके पास आठ-नौ बीघा भूमि थी। उनके दादा **गुरु सहाय राय** गाँव के पटवारी (भूमि अभिलेख पालक) थे और पिता **अजायब लाल** पोस्ट ऑफिस में क्लर्क थे। माता **आनन्दी देवी** सियौली गौसपुर क्षेत्र के एक सम्पन्न परिवार से थीं।

धनपत राय अपने माता-पिता की चौथी संतान थे। उनसे पहले दो बहनें जन्म के कुछ समय बाद ही चल बसीं और तीसरी संतान भी एक पुत्री थी। उनके चाचा महावीर राय, जो एक बड़े ज़मींदार थे, उन्हें प्यार से **"नवाब"** कहकर बुलाते थे; यही नाम बाद में उनके शुरुआती साहित्यिक नाम **"नवाब राय"** के रूप में प्रयुक्त हुआ।

१.२ बाल्यकाल की घटनाएँ

प्रेमचन्द की माँ लंबे समय तक बीमार रहीं और जब वे मात्र आठ वर्ष के थे तब उनका निधन हो गया। माँ की मृत्यु के कुछ ही समय बाद उनकी दादी ने भी संसार छोड़ दिया। पिता सरकारी सेवा में व्यस्त रहते थे और बड़े भाइयों या बहनों का न होना उन्हें अकेला कर देता था, इसलिए बाल्यकाल में उन्होंने कई मानसिक यातनाएँ झेली। पिता ने पुनर्विवाह कर लिया, पर सौतेली माता से स्नेह न मिल पाने का दर्द उनके साहित्य में कई स्थानों पर परिलक्षित होता है।

बाल्यकाल में धनपत राय को **कहानियों का रस** बहुत प्रिय था। वे तिलिस्म-ए-होशरुबा जैसी फारसी कथाएँ सुनते और उनसे प्रेरित होते। उन्होंने एक पुस्तक विक्रेता के यहाँ काम किया, जहाँ उन्हें अनेक पुस्तकों को पढ़ने का अवसर मिला।

१.३ प्रारम्भिक शिक्षा

सात वर्ष की आयु में वे लमही के पास लालपुर स्थित एक **मदरसा** में पढ़ने गये, जहाँ उन्होंने *मौलवी* से **उर्दू** और **फ़ारसी** सीखी। यह शिक्षा उनकी प्रारम्भिक भाषा-निपुणता की आधारशिला बनी। बाद में वे मिशनरी स्कूल में पढ़े, जहाँ उन्होंने **अंग्रेज़ी** और **हिन्दी** का ज्ञान प्राप्त किया। इसी समय वे अंग्रेज़ी लेखक **जॉर्ज डब्ल्यू. एम. रेयोल्ड्स** की 'द मिस्ट्रीज़ ऑफ़ दी कोर्ट ऑफ़ लंदन' जैसे वृहद कथा-ग्रन्थों से प्रभावित हुए।

परिवार की आर्थिक परिस्थिति अच्छी न होने के कारण उन्होंने कुछ समय बाद पुस्तक-विक्रेता की नौकरी कर ली और घर खर्च में सहयोग करने लगे। १८९० के दशक के मध्य में उनके पिता का स्थानान्तरण **जमानिया** तहसील में हुआ। उन्होंने **क्वीन्स कॉलेज** (बनारस) में प्रवेश लिया, पर केवल द्वितीय श्रेणी (दूसरा स्थान) अंक मिलने के कारण फीस माफी नहीं मिल पायी और उन्हें पढ़ाई छोड़नी पड़ी। इस अवधि में उन्होंने बनारस के एक वकील के बेटे को पढ़ाने का काम शुरू किया और

पाँच रुपये महीने की मामूली आमदनी से परिवार को सहायता दी।

१.४ पारिवारिक जीवन और विवाह

१५ वर्ष की उम्र में (१८९५) उनका विवाह उनके ननिहाल के सौतेले दादा के द्वारा तय किया गया। दुल्हन एक समृद्ध ज़मींदार परिवार से सम्बन्धित और उनसे उम्र में बड़ी थीं। विवाह के बाद पारिवारिक तालमेल न बैठने के कारण पत्नी व सौतेली माँ में कलह रहने लगी, जिससे उनका मन घर में नहीं लगता। एक बार विवाद के समय पत्नी ने आत्महत्या का प्रयास किया जिसे प्रेमचन्द ने डाँटकर रोक दिया; इससे क्षुब्ध होकर पत्नी मायके चली गयीं और प्रेमचन्द ने उन्हें वापस लाने में कोई रुचि नहीं दिखाई।

पिताजी का १८९७ में निधन हो गया। कुछ वर्षों बाद १९०६ में उन्होंने एक **बाल विधवा** शिवरानी देवी से विवाह किया, जो फतेहपुर के निकट एक ज़मींदार परिवार की पुत्री थीं। उस समय विधवा-विवाह को समाज स्वीकार नहीं करता था, इसलिए इस विवाह के कारण उन्हें आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। शिवरानी देवी ने अपने पति के जीवन संघर्ष और व्यक्तित्व पर बाद में 'प्रेमचन्द घर में' नामक संस्मरण लिखा। इस दम्पति के दो पुत्र हुए – श्रीपत राय और अमृतकुमार राय।

२ प्रारम्भिक जीवन-संघर्ष और अध्यापन कार्य

२.१ आर्थिक कठिनाइयाँ और जीविका

पिता के निधन के बाद परिवार की आर्थिक स्थिति डगमगा गयी। क्वीन्स कॉलेज से पढ़ाई छोड़ने के बाद प्रेमचन्द ने केवल पाँच रुपये मासिक पर वकील के बेटे को पढ़ाया। उसके बाद १८९९ में उन्होंने अपने एकत्रित पुस्तकों में से कुछ को बेचने का प्रयास किया। पुस्तकों को बेचने गये तो वहां मिशन स्कूल के हेडमास्टर से मुलाकात हुई, जिसने उन्हें **चुनार** के मिशन स्कूल में शिक्षक की नौकरी का प्रस्ताव दिया। यह नौकरी **१८ रुपये प्रति माह** पर थी। उसी समय वे एक अतिरिक्त ट्यूशन भी देते थे, जिससे पाँच रुपये और मिलते थे।

२.2 सरकारी अध्यापक की नियुक्ति

१९०० में उन्हें सरकारी जिला विद्यालय **बहराइच** में सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्ति मिली और वे २० रुपये महीने प्राप्त करने लगे। यह नियुक्ति उनके जीवन में एक स्थायित्व लेकर आयी। किन्तु तीन महीने बाद ही उनका स्थानांतरण **प्रतापगढ़** विद्यालय में कर दिया गया। वहां वे अधिकारी के आवास के ऊपर एक कच्चे कमरे में रहते और उसके पुत्र को पढ़ाते थे। प्रतापगढ़ से वे १९०५ में प्रशिक्षण हेतु **इलाहाबाद** गये और फिर उन्हें **कानपुर** में स्थानांतरित किया गया।

कानपुर में उनका प्रवास लगभग चार वर्षों तक चला (मई १९०५ से जून १९०९ तक)। वहां उन्होंने उर्दू पत्रिका *ज़माना* के संपादक **मुंशी दया नारायण निगम** से मित्रता की। इसी पत्रिका में उनकी कई रचनाएँ प्रकाशित हुईं और वे साहित्यिक क्षेत्र में पहचाने जाने लगे।

२.३ राष्ट्रीय भावना और प्रशासनिक नौकरी

१९०५-०७ के बीच के वर्षों में वे राष्ट्रीय आंदोलनों से प्रेरित हुए। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नरम नेता **गोपल कृष्ण गोखले** की नीतियों की आलोचना करते हुए लोकमान्य **बाल गंगाधर तिलक** के तीव्र विचारों का समर्थन किया। १९०५ में *ज़माना* में प्रकाशित उनका लेख 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' में उन्होंने यह बताया कि स्वतंत्रता के लिये अंतिम रक्त-बिन्दु भी देश के लिए सर्वाधिक मूल्यवान है।

१९०७ में उनकी लघु कथाओं का संग्रह **'सोज़-ए-वतन'** प्रकाशित हुआ, जिसके देशभक्ति भरे संदेशों के कारण इसे ब्रिटिश सरकार ने विद्रोही घोषित कर प्रतिबंधित कर दिया। *सोज़-ए-वतन* की कई प्रतियाँ जब्त कर जला दी गयीं। इस घटना के बाद *ज़माना* के संपादक दया नारायण निगम ने उन्हें **"प्रेमचन्द"** नाम से लिखने की सलाह दी। धीरे-धीरे 'नवाब राय' की जगह 'प्रेमचन्द' नाम लोकप्रिय हो गया और लोग उन्हें **"मुंशी प्रेमचन्द"** कहने लगे।

२.४ हिन्दी साहित्य की ओर रुझान

प्रारम्भ में वे उर्दू में लिखते थे। १९१४ के लगभग उन्होंने हिंदी में भी लिखना आरम्भ किया। उनकी पहली हिंदी कहानी **'सौत'** १९१५ में पत्रिका *सरस्वती* में प्रकाशित हुई और १९१७ में **'सप्त सरोज'** नामक हिंदी कहानी-संग्रह आया। इसी दौर में वे उर्दू से हिंदी में अनुवाद भी करते थे और दोनों भाषाओं के बीच पुल का कार्य करते थे।

१९१६ में उन्हें पदोन्नति मिलकर **गोरखपुर** के नार्मल हाई स्कूल में सहायक मास्टर नियुक्त किया गया। गोरखपुर में वे पुस्तक विक्रेता बुद्धिलाल से मिले, जो उन्हें उपन्यास पढ़ने के लिए देते और बदले में वे परीक्षा-सहायिका पुस्तकें बेचते थे। इन वर्षों में उन्होंने 'सेवासदन' (उर्दू में *बाज़ार-ए-हुस्न*) नामक महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखा, जिसे १९१9 में हिंदी में पहली बार प्रकाशित किया गया।

२.५ आज़ादी के आंदोलन में सहभागिता

१९१9 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से **स्नातक (बी. ए.)** की डिग्री प्राप्त करने के बाद वे शिक्षा विभाग में पदोन्नत होकर **उप-निरीक्षक** बने। ८ फरवरी १९२१ को

गोरखपुर में **महात्मा गांधी** ने असहयोग आंदोलन के समर्थन में सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने का आवाहन किया। प्रेमचन्द ने पाँच दिनों तक विचार कर पत्नी की सहमति से नौकरी छोड़ दी। १८ मार्च १९२१ को वे गोरखपुर छोड़ बनारस वापस आये और साहित्य को जीवन-यापन का साधन बनाया। इस निर्णय से उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ीं, पर वे साहित्य और स्वतंत्रता-संग्राम दोनों में पूरी ऊर्जा से संलग्न रहे।

२.६ मुद्रणालय और पत्रिका प्रकाशन

आर्थिक आत्मनिर्भरता हेतु उन्होंने १९२३ में बनारस में **सारस्वती प्रेस** नामक अपनी छापाखाना और प्रकाशन संस्था स्थापित की। यहाँ से उन्होंने अपनी पुस्तकें और अन्य साहित्य प्रकाशित करना आरम्भ किया। इस दौरान उन्होंने १९२4 में **'रंगभूमि'**, १९२६ में **'निर्मला'**, १९२७ में **'प्रतिज्ञा'** और १९३१ में **'गबन'** जैसे उपन्यास प्रकाशित किये। १९३० में उन्होंने साहित्यिक-राजनीतिक साप्ताहिक पत्रिका **'हंस'** की शुरुआत की, जो राष्ट्रवादी विचारों की मुखर अभिव्यक्ति थी। परन्तु यह पत्रिका लाभ में नहीं रही और बाद में उन्हें इसके प्रकाशन को स्थगित करना पड़ा।

१९३१-३२ में उन्होंने 'मायारडा' और 'जागरण' पत्रिकाओं का संपादन भी किया। इसी दौरान उन्होंने 'कर्मभूमि' (१९३२) उपन्यास लिखा, जिसमें गाँधीवादी विचारों और किसान-मजदूर संघर्षों को गहराई से चित्रित किया।

२.७ फिल्म उद्योग का अनुभव

आर्थिक तंगी और नई संभावनाओं की खोज में वे ३१ मई १९३४ को **बम्बई** (मुम्बई) पहुँचे। वहाँ उन्होंने अजंता सिने टोन के लिए पटकथा लेखन का कार्य स्वीकार किया और मजदूर वर्ग के जीवन पर आधारित फिल्म **'मज़दूर'** की पटकथा लिखी। उन्होंने स्वयं फिल्म में श्रमिक नेता की भूमिका में अभिनय भी किया। परन्तु कुछ प्रभावशाली उद्योगपतियों के दबाव से फिल्म की रिलीज़ पर रोक लग गयी। यह फिल्म दिल्ली और लाहौर में प्रदर्शित हुई, पर बाद में श्रमिक आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के कारण प्रतिबंधित कर दी गयी।

इस दौरान उनके स्वयं के छापाखाने की आर्थिक स्थिति भी संकट में थी और कर्मचारी वेतन न मिलने पर हड़ताल पर चले गये। १९३४-३५ में सारस्वती प्रेस कर्ज़ में डूब गया और उन्हें 'जागरण' का प्रकाशन बंद करना पड़ा। बम्बई के व्यावसायिक वातावरण से वे असंतुष्ट हुए और वे ४ अप्रैल १९३५ को प्रायः आधे वर्ष के भीतर ही बनारस लौट आये।

२.८ अन्तिम वर्ष और निधन

बम्बई से लौटकर वे इलाहाबाद में बसना चाहते थे जहाँ उनके दोनों पुत्र पढ़ाई कर रहे थे। उन्होंने 'हंस' पत्रिका का प्रकाशन भी वहीँ से करने का विचार किया, पर स्वास्थ्य तथा आर्थिक समस्याओं के कारण इसे भारतीय साहित्यिक परिषद को सौंप दिया।

१९३६ में **प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन** (प्रगतिशील लेखक संघ) का गठन हुआ और लखनऊ में आयोजित सम्मेलन में प्रेमचन्द को इसका प्रथम अध्यक्ष चुना गया। उसी वर्ष ८ अक्टूबर १९३६ को लगातार बीमार रहने के बाद उनका निधन हो गया।

उनकी आख़िरी पूर्ण कृति **'गोदान'** (१९३६) मानी जाती है, जिसे हिंदी साहित्य के सबसे श्रेष्ठ उपन्यासों में गिना जाता है। इसमें किसान **होरी** की दयनीय दशा के माध्यम से ग्रामीण भारत के शोषण और संघर्ष को दिखाया गया है।

३ साहित्यिक यात्रा : उपन्यास, कहानी और निबंध

३.१ प्रारम्भिक रचनाएँ और देशभक्ति का स्वर

प्रेमचन्द की रचनात्मक यात्रा उर्दू से आरम्भ होती है। उनकी पहली प्रकाशित कहानी **'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न'** थी, जिसमें उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए बलिदान की महत्ता बतायी। १९०३-०५ में वे उर्दू में उपन्यास **'अस्रार-ए-मआबिद'** (देवस्थान रहस्य) लिख रहे थे, जिसमें उन्होंने मन्दिरों में व्याप्त भ्रष्टाचार और महिलाओं के शोषण को उजागर किया। १९०७ में उनका छोटा उपन्यास **'हमखुर्मा-ओ-हमसवाब'** (हिंदी में 'प्रेमा') प्रकाशित हुआ, जिसमें विधवा-विवाह और समाज के विरोध का वर्णन मिलता है। इसी वर्ष *किश्ना* और *रूठी रानी* जैसे उपन्यास भी प्रकाशित हुए, हालांकि ये आज उपलब्ध नहीं हैं।

'सोज़-ए-वतन' (१९०७) में शामिल चार कहानियों में देशभक्ति का तीव्र स्वर था; इनको पढ़कर ब्रिटिश शासन भयभीत हुआ और पुस्तक को जब्त कर लिया गया। इसी घटना के बाद 'नवाब राय' का नाम बदलकर 'प्रेमचन्द' हुआ।

३.२ हिन्दी उपन्यासों का विकास

सेवासदन (१९१९) – यह उनका पहला महत्त्वपूर्ण हिंदी उपन्यास है। इसमें बनारस की एक असंतुष्ट गृहिणी **सुमित्रा** की कहानी है, जो पति द्वारा अपमानित होने पर वेश्यालय में चली जाती है, पर बाद में अनाथालय में बालिकाओं की सेवा करती है। यह कृति समाज में स्त्री-समस्या, वेश्यावृत्ति और धार्मिक पाखंड का यथार्थ चित्रण करती है।

प्रेमाश्रम (१९२२) – इस उपन्यास में गाँव के किसानों और ज़मींदारों के मध्य संघर्ष को दिखाया गया है। लेखक ने सामंतवाद, दहेज प्रथा और ग्रामीण जीवन की यातना को अत्यंत संवेदनशीलता से व्यक्त किया।

रंगभूमि (१९२४) – इस राजनीतिक उपन्यास में अन्धे भिखारी **सूरदास** को नायक बनाया गया है, जो औद्योगिक और उपनिवेशवादी लालच के विरुद्ध नैतिक बल के रूप में खड़ा होता है। लेखक ने औपनिवेशिक शासन के अत्याचार, स्वदेशी उद्योगों के विनाश और धार्मिक अंधविश्वासों का चित्रण किया है।

निर्मला (१९२६) – यह उपन्यास दहेज-प्रथा, बाल-विवाह और स्त्री जीवन की त्रासदी पर आधारित है। नायिका *निर्मला* का विवाह एक वृद्ध पुरुष से होता है; उसके सौतेले पुत्र से अनावश्यक संदेह में उत्पन्न भयावह परिणति समाज की रूढ़ियों की आलोचना करती है।

प्रतिज्ञा (१९२७) – यहाँ लेखक विधवा-विवाह को केन्द्र में रखते हैं। कर्तव्य और सामाजिक प्रतिबंधों के द्वंद्व में फँसे पात्रों के माध्यम से प्रेमचन्द ने सामाजिक सुधार की आवश्यकता पर बल दिया।

गबन (१९३१) – यह उपन्यास मध्यवर्गीय लालच और नैतिक पतन को उजागर करता है। नायक *रमानाथ* पत्नी को गहने पहनाने के आकर्षण में घोटाले करता है और बाद में अपराधबोध से भागता है।

कर्मभूमि (१९३२) – इस कृति में गाँधीवादी विचार, सत्याग्रह, अस्पृश्यता-उन्मूलन और किसान आंदोलन प्रमुख विषय हैं। नायक *अमृता* और *सुखदा* के माध्यम से लेखक ने सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन के लिए जनजागरण का संदेश दिया है।

गोदान (१९३६) – यह उनकी अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ मानी जाने वाली रचना है। उपन्यास के नायक *होरी* का स्वप्न एक गाय खरीदने का है, पर ऋण, भाई की ईर्ष्या और सामाजिक जटिलताओं के कारण वह बार-बार असफल होता है और अंततः उसकी मृत्यु हो जाती है। यह कृति ग्रामीण भारत के आर्थिक शोषण, सामाजिक दबाव और वर्ग संघर्ष का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

३.३ कथाएँ और लघु कथा साहित्य

प्रेमचन्द ने लगभग ३०० से अधिक कहानियाँ लिखीं। उनकी कहानियों का संग्रह **'मानसरवर'** सात भागों में प्रकाशित हुआ। इन कहानियों में समाज के विविध वर्गों का जीवन, मानवीय भावनाएँ, नैतिक द्वंद्व तथा सामाजिक कुरीतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। कुछ प्रमुख कहानियाँ इस प्रकार हैं:

- **पंच परमेश्वर** – न्याय के प्रति निष्पक्षता और दोस्ती के बीच संघर्ष को चित्रित करने वाली कहानी।
- **कफन** – गरीबी और संवेदनहीनता की चरम स्थिति दिखाती है। पिता-पुत्र पत्नी/बहू की मृत्यु के लिये मिलने वाले पैसे से कफन खरीदने के बजाय भोजन कर लेते हैं।
- **पूस की रात** – एक गरीब किसान की ठंडी रात में खेत की रखवाली करते हुए दयनीय दशा को दर्शाता है।
- **ईदगाह** – छोटे बालक *हामिद* की संवेदनशीलता और दादी के लिये चिमटा खरीदने के त्याग को लेकर प्रसिद्ध कहानी।
- **बड़े भाई साहब** – शिक्षा के प्रति बड़े भाई की कट्टरता और छोटे भाई की चंचलता के बीच भावुक व हास्यपूर्ण घटनाएँ।
- **ठाकुर का कुआँ** – जाति आधारित भेदभाव और छुआछूत की समस्या पर तीखा प्रहार।

इन कहानियों में प्रेमचन्द ने सरल भाषा, गहरे यथार्थ और करुणामय संवेदनाओं से पाठकों का हृदय जीत लिया। उन्होंने न केवल लघु कथा की विधा को प्रतिष्ठित किया, बल्कि उसे सामाजिक चेतना का माध्यम बनाया।

३.४ निबंध साहित्य

प्रेमचन्द ने उपन्यास और कहानियों के अतिरिक्त अनेक **निबंध** भी लिखे। उनके निबंधों का प्रमुख उद्देश्य साहित्य और समाज के संबंधों पर विचार करना था। 'साहित्य का उद्देश्य' नामक उनके निबंध में वे स्पष्ट कहते हैं कि **साहित्य का कार्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालना और समाज को दिशा देना है**। वे मानते थे कि लेखक का दायित्व केवल कला-साधना नहीं, बल्कि समाज के प्रति उत्तरदायित्व भी है।

उनके निबंधों में भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और तर्कसंगत है। वे शुष्क सिद्धान्तों के बजाय उदाहरणों और जीवन प्रसंगों के माध्यम से बात रखते हैं। उन्होंने साम्प्रदायिक सद्भाव, नारी-मुक्ति, शिक्षा, किसान-मजदूर समस्याएँ, भाषा-विकास तथा राष्ट्र-निर्माण पर गंभीर विचार व्यक्त किये।

४ सामाजिक प्रतिबद्धता एवं वैचारिक विकास

४.१ समाज-सुधारक दृष्टि

प्रेमचन्द का साहित्य समाज के लिए था; वे सामाजिक विसंगतियों को उजागर कर उनके समाधान की ओर इशारा करते थे। दलितों, महिलाओं, किसानों, श्रमिकों और निम्न वर्गों की पीड़ा उनकी रचनाओं का केन्द्रीय विषय है।

किसान और मजदूर – 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' जैसे उपन्यास किसानों और मजदूरों की दयनीय दशा, ऋण-जाल, जमींदारी शोषण और आर्थिक असमानता को दिखाते हैं। वे श्रम की गरिमा को स्वीकारते हुए कृषकों और श्रमिकों की दुर्दशा से पाठकों का परिचय कराते हैं।

नारी-मुक्ति – 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गबन' जैसी कृतियों में उन्होंने नारी-शोषण, दहेज प्रथा, बाल विवाह तथा विधवा जीवन की यातनाओं को गहन संवेदना से चित्रित किया। उनके पात्र केवल अत्याचार सहने वाली निष्क्रिय महिलाएँ नहीं, बल्कि साहसी, स्वाभिमानी और निर्णय-प्रधान स्त्रियाँ भी हैं।

जातिगत भेदभाव – 'ठाकुर का कुआँ' और 'सद्गति' जैसी कहानियों में उन्होंने छुआछूत और ऊंच-नीच की अमानवीय प्रथा पर चोट की।

साम्प्रदायिक सौहार्द – प्रेमचन्द हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। उन्होंने कहानी 'हवन कुंड' और उपन्यास 'कर्मभूमि' में धार्मिक उन्माद को नकारते हुए सह-अस्तित्व का संदेश दिया।

४.२ राष्ट्रवाद और स्वतंत्रता आन्दोलन

प्रेमचन्द का जीवन भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के समानान्तर चला। आरम्भिक रचनाओं में देशभक्ति का स्वर था; *सोज़-ए-वतन* के प्रतिबंध से उनका राष्ट्रीय प्रेम जाहिर होता है।

महात्मा गांधी से प्रेरित होकर उन्होंने असहयोग आंदोलन में भाग लिया और सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उनके कई पात्र सत्याग्रह, अहिंसा और स्वदेशी के विचारों से प्रेरित हैं। 'कर्मभूमि' और 'गबन' में गाँधीवादी मूल्य स्पष्ट दिखते हैं।

४.३ वैचारिक विकास और समाजवादी दृष्टि

प्रेमचन्द का प्रारम्भिक लेखन आदर्शवाद और नैतिकता से ओत-प्रोत था, पर धीरे-धीरे उनका यथार्थ और समाजवादी दृष्टिकोण अधिक प्रबल होता गया। 'सेवासदन' में उन्होंने नैतिक सुधार पर बल दिया, 'प्रेमाश्रम' में किसानों की पीड़ा, 'रंगभूमि' में उपनिवेशवाद, 'कर्मभूमि' में राजनीतिक आंदोलन, और 'गोदान' में वर्ग संघर्ष व आर्थिक शोषण को विषय बनाया।

वे गांधीवाद से प्रभावित अवश्य थे, परन्तु समाजवादी विचारधारा से भी सहानुभूति रखते थे। उनका मानना था कि साहित्यकार को समाज के लोगों के दुःख-दर्द को स्वर देना चाहिए और बदलाव की प्रेरणा बनना चाहिए।

४.४ भाषा-विचार और हिंदी-उर्दू समन्वय

प्रेमचन्द ने **हिन्दी और उर्दू** दोनों में लिखा। वे इन दोनों भाषाओं को एक ही महान भारतीय भाषा 'हिंदुस्तानी' के दो रूप मानते थे। उन्होंने सरल और बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया, जिसमें संस्कृत, फारसी, लोक बोली और प्रांतीय शब्द सहजता से घुलमिल गये। 'हिंदी भाषा की समृद्धि' विषय पर लिखते समय वे कहते हैं कि भाषा की शुद्धता से अधिक उसकी संप्रेषणीयता महत्त्वपूर्ण है।

वही साहित्यकार सशक्त है, जो जनता की भाषा में लिखे और समाज की आवाज़ को शब्द दे। इसलिए उन्होंने कठिन संस्कृत-निष्ठ शब्दों या उर्दू की क्लिष्टता से बचते हुए सीधे मन की भाषा का चयन किया।

५ साहित्यिक व्यक्तित्व की विशेषताएँ — यथार्थवाद, मानवीय करुणा एवं राष्ट्रीय चेतना

५.१ यथार्थवाद

प्रेमचन्द भारतीय साहित्य में **यथार्थवादी प्रवृत्ति** के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में ऐसे पात्रों और परिस्थितियों को चित्रित किया, जो वास्तविक जीवन से लिये गये थे।

उनका यथार्थ **आदर्शवादी दृष्टी** से अलग था; वे न तो जीवन को केवल सुन्दरता की दृष्टि से देखते थे और न ही विकृति की अतिरंजन कथा लिखते थे। उनका यथार्थ सन्तुलित और व्यापक है, जिसमें समाज के सभी वर्ग – किसान, मजदूर, स्त्री, दलित, मध्यवर्ग – सम्मिलित हैं। 'गोदान' में किसान होरी का संघर्ष, 'गबन' में मध्यवर्ग का नैतिक पतन, 'रंगभूमि' में उपनिवेशवादी शक्तियों का शोषण, 'सेवासदन' में वेश्यालयों और धार्मिक पाखंड का वर्णन – इन सबमें यथार्थ चित्रण है।

५.२ मानवीय करुणा

प्रेमचन्द के साहित्य में **मानवीय करुणा** का सागर बहता है। चाहे 'कफन' की अत्यंत दयनीय स्थिति हो या 'पूस की रात' के किसान की ठिठुरन, वे पात्रों की पीड़ा को इतने सजीव रूप में चित्रित करते हैं कि पाठक के मन में सहानुभूति स्वतः जागृत हो जाती है। उनकी करुणा पाश्चात्य रोमांटिक सहानुभूति नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानी माटी की संवेदना है। उनकी दृष्टि में हर व्यक्ति में अच्छे-बुरे का मिश्रण है; इसलिए वे किसी

वर्ग को पूर्ण दोषी या निर्दोष नहीं बताते।

५.३ राष्ट्रीय चेतना

प्रेमचन्द की रचनाओं में **राष्ट्रीय चेतना** के स्वर गूँजते हैं। वे स्वदेशी, स्वराज्य, असहयोग, सत्याग्रह और सामाजिक न्याय जैसे विषयों को साहित्यिक सरणि में प्रस्तुत करते हैं। 'सोज़-ए-वतन' की कहानियों में स्वतंत्रता के लिए बलिदान, 'कर्मभूमि' में सत्याग्रह आंदोलन का प्रभाव, 'गबन' में गांधीजी के विचारों का प्रभाव, 'हंस' और 'जागरण' पत्रिकाओं में राष्ट्रवादी लेख – इन सबके माध्यम से उन्होंने साहित्य को राष्ट्रीय आंदोलन का अंग बनाया।

५.४ भाषा-शैली की सरलता

उनकी भाषा सहज, संप्रेषणीय और प्रांजल है। उन्होंने कठिन शब्दावली से परहेज किया और ग्रामीण बोलियों, हिन्दुस्तानी, संस्कृत, उर्दू और अंग्रेज़ी से भी सरल शब्दों का प्रयोग कर एक अनूठी मिश्रित शैली विकसित की। वाक्यों की लंबाई मध्यम, प्रसंग अनुरूप और संवाद स्वाभाविक होते हैं।

५.५ चरित्र-चित्रण और मनोवैज्ञानिक अंत:दृष्टि

प्रेमचन्द के पात्र बहुआयामी हैं। वे नायक-खलनायक का विभाजन नहीं करते, बल्कि मनुष्य की जटिलता को यथार्थ रूप में दिखाते हैं। 'रंगभूमि' के उद्योगपति, 'गबन' का रमानाथ, 'कफन' के घीसू-माधव और 'बड़े भाई साहब' के दोनों भाई – सभी पात्रों में मानव स्वभाव की विभिन्न परतें हैं। वे पात्रों के मनोविज्ञान को, उनके सोच-विचार और अंतर्द्वंद्व को इतनी गहराई से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक उनसे तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

५.६ नैतिकता और सुधारवादी दृष्टि

उनकी रचनाएँ नैतिक दृष्टि से प्रेरित हैं; वे सामाजिक न्याय, करुणा और समानता की बात करते हैं। यद्यपि उनकी कहानियाँ उपदेशात्मक नहीं, पर उनमें से स्वतः ही नैतिक शिक्षा निकलती है। वे मानते थे कि साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज में नैतिक जागरण उत्पन्न करने का उपकरण होना चाहिए।

६ प्रेमचन्द का व्यक्तित्व : संघर्ष, आदर्श और मानवीयता

प्रेमचन्द का व्यक्तिगत जीवन भी उतना ही प्रेरणादायक है जितना उनका साहित्य।

६.१ दुःखों में धैर्य

बाल्यावस्था से ही उन्होंने कठिनाइयों का सामना किया – माँ, दादी और पिता

की मृत्यु, गरीबी, सौतेली माँ का व्यवहार, शिक्षा में रुकावटें। परंतु इन सबने उनका मनोबल नहीं तोड़ा। वे पढ़ने-लिखने में लगे रहे, आर्थिक संघर्षों में भी पुस्तकों से नाता नहीं तोड़ा।

६.२ साहसिक निर्णय

१५ वर्ष की आयु में विवाह, पुनर्विवाह का सामाजिक विरोध, सरकारी नौकरी छोड़ना, अपने बच्चों की चिंता के बावजूद स्वतंत्रता आंदोलन में सम्मिलित होना – ये सभी निर्णय उनके साहसी स्वभाव को दर्शाते हैं। उन्होंने नौकरी छोड़कर साहित्य-साधना को चुना और आर्थिक तंगी की परवाह नहीं की।

६.३ सादगी और ईमानदारी

उनका जीवन अत्यंत साधारण था। वे सादा भोजन, साधारण वस्त्र और सरल जीवन शैली अपनाते थे। उन्होंने लेखन के माध्यम से कभी धन या सत्ता का लोभ नहीं किया, बल्कि समाज की सेवा को प्राथमिकता दी। जब फिल्म उद्योग में अच्छा वेतन मिला, तब भी वे व्यावसायिक वातावरण से असंतुष्ट होकर लौट आये।

६.४ शिक्षा और साहित्य के प्रति समर्पण

अभावों के बावजूद उन्होंने १९१9 में बी.ए. की डिग्री पूरी की। वे आजीवन अध्ययनशील रहे और विश्व साहित्य से प्रेरणा लेते रहे। उन्होंने दत्त, टॉलस्टॉय, गोर्की, शरतचंद्र, टैगोर जैसे लेखकों के कार्यों का अध्ययन किया और उपन्यास, कहानी और निबंध को समृद्ध किया।

६.५ लोक-संस्कृति से प्रेम

प्रेमचन्द की रचनाओं में लोकगीत, लोकोक्तियाँ, कहावतें और ग्रामीण संस्कृति का भरपूर समावेश है। वे खेत-खलिहान, चौपाल, बाज़ार, धार्मिक अनुष्ठान, ग्रामीण मेलों और देहाती बोली को अपने साहित्य में जीवंत रूप से प्रस्तुत करते हैं। इससे उनकी रचनाएँ पढ़ते समय पाठक भारत के गाँवों को महसूस कर सकता है।

७ प्रेमचन्द का प्रभाव और विरासत

७.१ हिन्दी-उर्दू साहित्य पर प्रभाव

प्रेमचन्द ने हिंदी और उर्दू दोनों साहित्य में यथार्थवादी और सामाजिक संवेदनशीलता की नींव रखी। उनके बाद **जैनेंद्र कुमार**, **यशपाल**, **फणीश्वर नाथ "रेणु"**, **नागार्जुन**, **हरिवंश राय बच्चन**, **अमृतलाल नागर** आदि लेखकों ने इसी धारा को आगे बढ़ाया। उनका प्रभाव केवल कथाकारों पर ही नहीं, बल्कि नाटककारों, कवियों

और आलोचकों पर भी पड़ा।

७.२ फ़िल्म और टेलीविजन में रूपान्तरण

प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों पर अनेक फ़िल्में और धारावाहिक बने। १९३८ में 'सेवा सदन' पर फिल्म बनी; १९६६ में 'गबन' फ़िल्म में सुनील दत्त और साधना ने अभिनय किया। प्रसिद्ध निर्माता-निर्देशक **सत्यजित रे** ने उनकी कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर १९७७ में फिल्म बनायी, जो राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हुई। दूरदर्शन पर 'गुलदस्ता' और 'तहरीर… मुंशी प्रेमचन्द की' जैसे सीरियल आये।

७.३ अनुवाद और विश्व में पहचान

प्रेमचन्द के कार्यों का अंग्रेज़ी, रूसी, फ्रेंच तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ। यद्यपि वे जीवनकाल में विदेश नहीं गये और उनकी अंतरराष्ट्रीय प्रसिद्धि सीमित रही, पर बाद में उनकी रचनाएँ विश्व साहित्य में मान्य हुईं।

७.४ प्रगतिशील लेखक संघ

१९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना में उनकी भूमिका ऐतिहासिक रही। वे इसके प्रथम अध्यक्ष बने और लेखकों से सामाजिक न्याय, समानता और यथार्थवाद के पक्ष में लिखने का आह्वान किया। यह आंदोलन आने वाले दशकों में भारतीय साहित्य की दिशा निर्धारित करने वाला सिद्ध हुआ।

७.५ वैज्ञानिक दृष्टिकोण और शिक्षा पर विचार

प्रेमचन्द शिक्षा को सामाजिक उत्थान का साधन मानते थे। वे ग्रामीण और स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने विद्यालयों में नैतिकता, राष्ट्रभक्ति और लोकभाषा के समावेश की बात की। शिक्षा के माध्यम से वे समाज में वैज्ञानिक सोच, तर्कशीलता और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना चाहते थे।

८ निष्कर्ष

मुंशी प्रेमचन्द का जीवन और साहित्य अनवरत संघर्ष, करुणा और आदर्श का प्रतीक है। उन्होंने एक ओर गरीबी, बीमारी, पारिवारिक कष्ट और आर्थिक तंगी का सामना किया; दूसरी ओर साहित्य और समाज सुधार के प्रति अटूट समर्पण रखा। उनके साहित्य ने भारतीय समाज को अपनी कमजोरियों से परिचित कराया और सुधार के लिए प्रेरित किया।

उनकी कहानियों और उपन्यासों में **यथार्थ**, **मानवीय करुणा**, **राष्ट्रीय चेतना** और **सामाजिक न्याय** के तत्व इतने गहरे हैं कि आज भी वे उतने ही प्रासंगिक हैं। वे